प्रार्थना



मूल्य साठ पैसे

श्रीहरि: शरणम्

* प्रार्थना *

गीताप्रेस, गोरखपुर

प्रा० १—२—

प्रकाशक—गोविन्दभवन-कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर

[भारत-सरकारद्वारा उपलब्ध कराये गये रियायती मूल्यके कागजपर मुद्रित]

सं० २००७ से २०३७ तक			२,१५,२५०
सं० २०४२	पन्द्रहवाँ संस्करण		२०,०००
		कुल	२,३५,२५०

मूल्य साठ पैसे

मुद्रक—गीताप्रेस, गोरखपुर

श्रीहरिः

प्रार्थना-परिचय

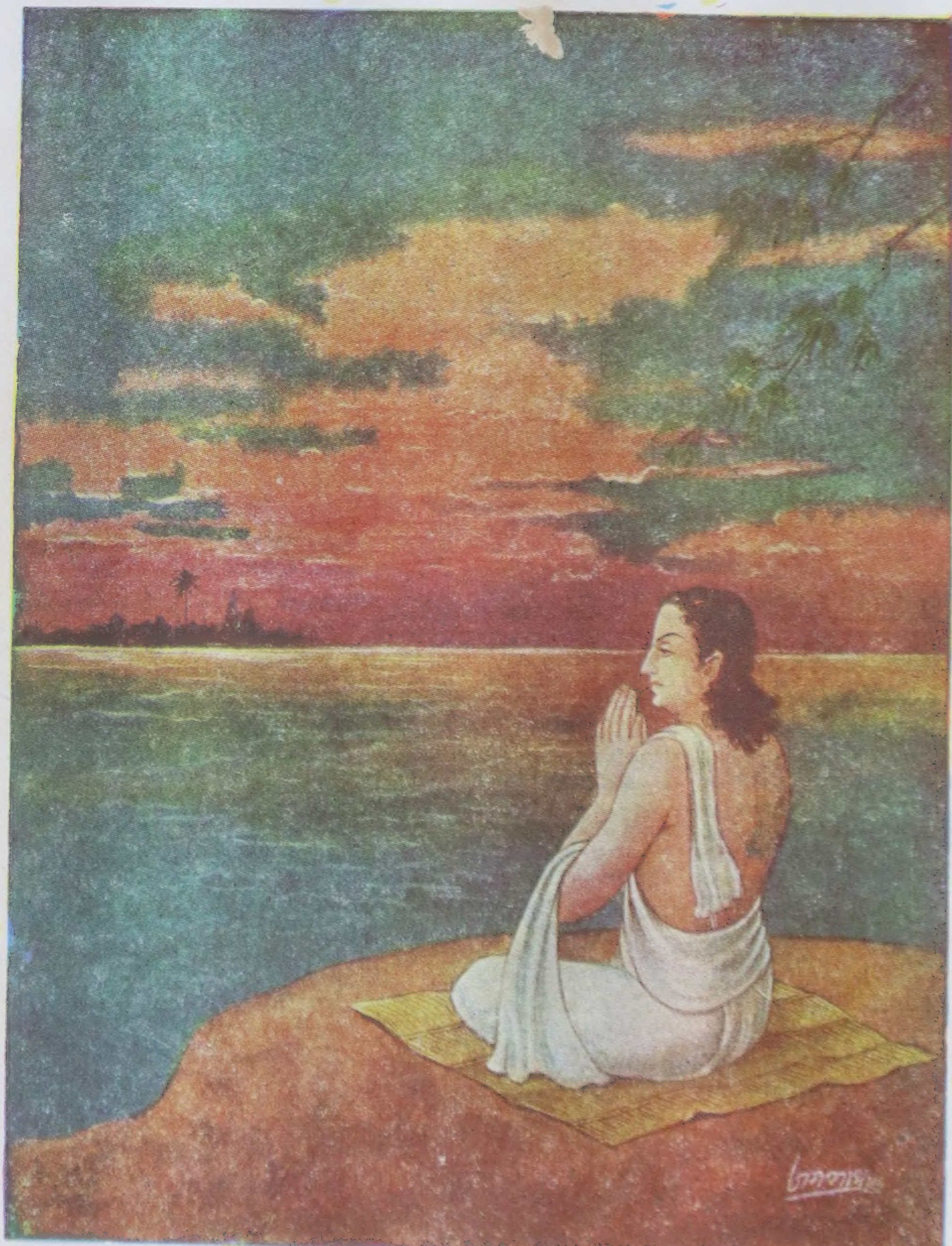
प्रार्थना मनकी वस्तु है। उसके लिये बँधे-नपे नियमोंकी, व्याकरणशुद्ध शब्दोंकी, छन्दोंकी और कविताओंकी अनिवार्यता नहीं है। प्रगाढ़ विश्वासके साथ अपने भगवान्‌से अपनी भाषामें अपने मनकी सच्ची स्थितिके अनुसार सहज ही जो कुछ भी आवेदन-निवेदन किया जाय, वही प्रार्थना है। जीवनमें ऐसी प्रार्थनाएँ असंख्य बार हुई हैं, होती हैं—कभी शब्दोंमें, कभी मूक भाषामें और कभी केवल मनके संकल्पमात्रमें ही। इनमेंसे जो बहुत ही थोड़ी-सी लिपिबद्धरूपमें हुईं, वे ही यहाँ छापी जा रही हैं। यह अपने प्रभुके साथ अपनी निजकी बातचीत है। यह न तर्ककी चीज है न विचारकी ही। न इसमें बनावट ही है। यह तो मनके सहज भावोच्छ्वास हैं, जो समय-समयपर मनकी जैसी स्थिति रही है, उसीके अनुसार प्रकट हुए हैं। इनमें सम्बद्धता, नियमितता तथा पूर्वापरकी एकताका कोई प्रश्न ही नहीं है। जो कुछ है, यथार्थ है। ये किसीके जीवनमें, उसकी समस्याओंके समाधानमें, कठिनाइयोंके दूर करनेमें और लक्ष्यकी प्राप्तिमें कुछ मार्ग-निर्देश कर सकें, कुछ सहायक हो सकें तो बड़े आनन्दकी बात है।

कोई एक—

परमकारुणिको न भवत्परः
परमशोच्यतमो न च मत्परः ।
इति विचिन्त्य हरे मयि पामरे
यदुचितं यदुनाथ तदाचर ॥

'हरे ! तुमसे बढ़कर परम कारुणिक और कोई नहीं एवं मुझसे बढ़कर परम शोचनीय और कोई नहीं । यदुनाथ ! यों समझकर मुझ पामरके लिये जो उचित हो, वही करो !'

प्रार्थना



प्रार्थना

प्रार्थना

[१]

हे प्रभो !

मैं अधम हूँ, नीच हूँ, पामर हूँ, पापोंकी कालिमासे कलङ्कित हूँ। इतना सब होते हुए भी हूँ तो तुम्हारा ही न? इस सत्यको, हे सत्य ! तुम अस्वीकार नहीं कर सकते। बस, इसी सत्यके आधारपर मैं तुमसे यह प्रार्थना करता हूँ कि तुम मेरे मनको ऐसा बना दो जिसमें वह इस सत्यको सदा स्मरण रक्खे। क्या इस पतितकी, हे पतितपावन ! इतनी विनती भी नहीं सुनोगे ?

× × × ×

हे प्रभो ! मैं तुमसे विमुख हूँ, संसारके जालमें फँसा हूँ, भूलकर भी कभी तुम्हारी ओर चित्त नहीं लगाता। परंतु हे विश्वरूप ! मेरे लीलामय ! यह तो सत्य ही है कि सब कुछ तुम्हीं हो। फिर चाहे मैं किसी ओर देखूँ, किसी ओर जाऊँ, किसीमें मन लगाऊँ, तुम्हींको तो देखता हूँ, तुम्हारी ओर ही तो जाता हूँ, तुम्हींमें तो मन लगाता हूँ। बस, यही प्रार्थना है कि इस समझको प्रतिक्षण मेरे हृदयमें जगाये रक्खो मेरे स्वामी !

× × × ×

हे प्रभो ! मैं अपनी झूठी ऐंठमें अकड़ा रहता हूँ और अपनेको बलवान्, धनवान्, संततिवान्, जनवान्, विद्वान् और बुद्धिमान् मानता हूँ। परंतु हे सर्वेश्वर ! यह तो सत्य ही है कि मुझमें जो कुछ भी है सो सब तुम्हारा ही तो है। मैं भी तुम्हारी ही सम्पत्ति हूँ। हे सर्वलोकमहेश्वर ! बस, इस सत्य सिद्धान्तको मैं कभी न भूलूँ, यह वरदान दे दो मेरे मालिक !

× × × ×

हे प्रभो ! लोग कहते हैं जगत् सब स्वप्नवत् है, तुम्हारी मायासे बिना ही हुए यह सब कुछ दीखता है; परंतु माया या स्वप्न पुरुषके आश्रित होनेके कारण यह तो हे सत्यसंकल्प ! सत्य ही है न कि यह सारा प्रपञ्च तुम्हारे संकल्पपर स्थित है। प्रपञ्चमें ही मैं भी हूँ, इसलिये मैं भी तुम्हारे संकल्पमें हूँ। मेरे सरीखा कौन भाग्यवान् होगा, जिसे तुम अपने मनमें रखते हो। बस, प्रभो ! मुझे तो अपने संकल्पमें ही रक्खो और ऐसा बना दो कि मैं सब कुछ भूलकर—दुनियाकी सारी सुधि भुलाकर केवल यही याद रक्खूँ कि मैं तुम्हारे संकल्पमें ही स्थित हूँ।

× × × ×

हे प्रभो ! कहाँ मैं क्षुद्र-सी परिधिमें रहनेवाला क्षुद्रतम कीट और कहाँ तुम अपने एक-एक रोममें अनन्त ब्रह्माण्डोंको धारण करनेवाले कल्पनातीत महामहिम महान् ! मैं तुम्हारी थाह कहाँ पाऊँ और कैसे पाऊँ ? परंतु हे सर्वाधार ! यह तो

सत्य है कि अनन्त ब्रह्माण्डोंमेंसे किसी एक क्षुद्रतम ब्रह्माण्डका क्षुद्रतम कीट होनेपर भी हूँ तो तुम्हारे ही द्वारा धारण किया हुआ न ? प्रभो ! बस, इस तत्त्वको कभी भूलने न पाऊँ और सदा-सर्वदा अपनेको तुम्हारे ही आधारपर स्थित देखूँ, अपनेको तुम्हारे ही अंदर समझूँ !

× × × ×

हे प्रभो ! मैं दुःखोंसे दबा हूँ, तापोंसे संतप्त हूँ, अभावोंसे आकुल हूँ, व्यवस्थाओंसे व्याकुल हूँ, अपमानोंसे पीड़ित हूँ, अपकीर्तिसे कलङ्कित हूँ, व्याधियोंसे ग्रस्त हूँ और भयोंसे त्रस्त हूँ। मेरे समान दुखी दुनियामें दूसरा कौन होगा ? सारे दुःखोंका पहाड़ मानो मुझपर ही टूट पड़ा है। परंतु हे मेरे प्रियतम ! क्या यह सच नहीं है कि यह सब तुम्हारी ही भेजी हुई सौगात है ! तुम्हारा ही प्रेमसे दिया हुआ उपहार है ? इस सत्यको जाननेपर भी हे मेरे प्यारे ! फिर मुझे इनकी प्राप्तिमें असंतोष क्यों होता है ? तुम्हारी दी हुई प्रत्येक वस्तुमें तुम्हारे हृदयके निर्मल प्रेमको देखकर, ओ मेरे हृदयधन ! तुम्हारे प्रत्येक विधानमें तुम्हारा कोमल कर-स्पर्श पाकर मैं परमसुखी हो सकूँ। ऐसा प्रेमियोंका-सा विलक्षण हृदय मुझे दे दो नाथ !

× × × ×

हे प्रभो ! मैं दिन-रात दुनियामें दुःखकी, शोककी, पीड़ाकी, निराशाकी, असफलताकी, अपमानकी, अभावकी,

अकालकी, अकीर्तिकी, दरिद्रताकी, वियोगकी, रोगकी और मृत्युकी डरावनी सूरतोंको देख-देखकर भयभीत होता हूँ। परंतु हे मेरे चतुर खिलाड़ी ! हे मेरे विलक्षण बहुरूपिये ! क्या यह सत्य नहीं है कि इन सब रूपोंको धारण करके एक तुम्हीं तो मुझसे खेलने आते हो ? और क्या यह भी सत्य नहीं है कि मैं तुम्हें न पहचाननेके कारण ही डरकर इनसे दूर भागना चाहता हूँ ? प्यारे ! मुझे ऐसी दिव्य आँखें दे दो कि फिर तुम्हें पहचाननेमें मैं कभी भूलूँ ही नहीं ! चाहे तुम किसी भी रूपमें आओ, मैं तुम्हें पहचान ही लूँ और तुम्हारे नये-नये खेलों-को देख-देखकर वैसे ही खिलता रहूँ, जैसे सूर्यकी किरणोंको देखते ही कमल खिल उठते हैं। दे डालो न प्रभु ! ऐसी पर्देके भीतरकी वस्तुको पहचाननेवाली पैनी नजर !

× × × ×

हे प्रभो ! मैं माताके स्नेहसे, पिताके वात्सल्यसे, मित्रकी मैत्रीसे, पत्नीके प्रेमसे, संतानके प्यारसे, सुकर्मोंकी कीर्तिसे और लक्ष्मीकी मोहिनीसे मुग्ध हो रहा हूँ। सदा अन्धा ही बना रहता हूँ। परंतु ओ मेरे महामायावी ! क्या यह सत्य नहीं है कि तुम्हीं मा बनकर स्नेह करते हो, पिता बनकर पालते हो, मित्र बनकर मैत्री करते हो, पत्नी बनकर प्रेम करते हो, संतान बनकर अपनी तोतली वाणीसे मोहते हो, सुकर्म बनकर कीर्तिके रूपमें आते हो और मा लक्ष्मी बनकर मुझे अपना गुलाम बना लेते हो ? क्या इ

स्नेह, वात्सल्य आदिकी सारी धाराओंका मूलस्रोत तुम्हीं एकमात्र अखिल भावोंके महान् सागरसे ही निकल रहा है ? और क्या यह भाव-धारा पुनः लौटकर तुम समुद्ररूपमें ही मिलनेको नहीं जा रही है ? ओ मेरे मनचोर ! बस, इतनी कृपा करो कि मैं इन सबमें और इन सभीके सम्बन्धों और भावोंमें तुम्हींको देख-देखकर सदा मुग्ध होता रहूँ !

× × × ×

हे प्रभो ! बगीचेके रंग-बिरंगे फूलोंकी सुन्दरता और सुगन्ध, आकाशमें उड़नेवाले पक्षियोंकी चित्र-विचित्र वर्णोंकी बनावट और उनकी सुमधुर काकली, सरोवरोंमें और नदियोंमें इधर-से-उधर फुदकनेवाली मछलियोंकी मोहिनी सूरत और पुष्पोंके रसपर मँडराती हुई तितलियोंकी कलापूर्ण रचना, सब मनको हरण किये डालती हैं । यह सुन्दरता, सौरभ, कला और यह मीठा स्वर, हे सौन्दर्य और माधुर्यके अनन्त सागर ! तुम्हारे ही तो जलकण हैं । बस, हे अखिल सौन्दर्यमाधुर्यनिधि ! ऐसी कृपा करो, जिससे मैं इस बातको सदा स्मरण रख सकूँ और प्रत्येक सौन्दर्य-माधुर्यकी बहती धाराका सहारा लेकर तुम्हारे अनन्त सौन्दर्य-माधुर्यका कुछ अंशोंमें तो उपभोग करूँ !

× × × ×

हे प्रभो ! मेरे हृदयमें ऐसी आग लगा दो, जो सदा बढ़ती ही रहे । विषयोंकी सारी आसक्ति और कामना

उसका इंधन बनकर उसे और भी प्रचण्ड कर दे और इतनी प्रचण्ड कर दे कि फिर वह तुम्हारी दर्शन-सुधा-वृष्टिके बिना कभी बुझे ही नहीं !

× × × ×

हे प्रभो ! जैसे सूर्यकान्तमणि सूर्यकी किरणोंका स्पर्श पाते ही जल उठती है, वैसे ही हे नाथ ! तुम्हारे भक्त साधुओंका जाने-अनजाने संग पाते ही मेरे मनमें तुम्हारे प्रेमकी आग भड़क उठे । हे अनन्त ब्रह्माण्डोंमें अनन्त सूर्योंके प्रकाशक ! मेरे मनको सूर्यकान्तमणिके सदृश बना दो !

× × × ×

हे प्रभो ! जैसे चन्द्रकान्तमणि चन्द्रकिरणोंका योग प्राप्त करते ही द्रवित होकर रस बहाने लगती है, वैसे ही हे अनन्त सुधाकरोंको सुधा दान देनेवाले सुधासागर ! मेरा हृदय चन्द्रकान्तमणिके समान बना दो, जो तुम्हारे गुणनामरूपी सुधा-भरी शशि-किरणोंका संयोग पाते ही द्रवित होकर बहने लगे !

× × × ×

हे प्रभो ! चुम्बक उसी लोहेको अपनी ओर खींचता है, जो निखालिस होकर उसके सामने आता है । मुझे भी हे कृपासागर ! समस्त अभिमानोंके मिश्रणसे रहित कर दीन-हीन निखालिस लोहा बना दो, जो तुम्हारे आकर्षक कृष्णनाम-चुम्बकको पाते ही दौड़कर उसमें सदाके लिये चिपट जाय ।

[२]

दयामय !

सुखी होनेके लिये मैंने कौन-सा काम नहीं किया ? विवाह किया, संतानें पैदा कीं, धन कमाया, यश-कीर्तिके लिये प्रयास किया; लोगोंसे प्रेम बढ़ाना चाहा और न मालूम क्या-क्या किया. परंतु सच कहता हूँ मेरे स्वामी ! ज्यों-ज्यों सुखके लिये प्रयत्न किया, त्यों-ही-त्यों परिणाममें दुःख और कष्ट ही मिलते गये। जहाँ मन टिकाया वहीं धोखा खाया ! कहीं भी आशा फलवती नहीं हुई। चिन्ता, भय, निराशा और विषाद बढ़ते ही गये। कहीं रास्ता दिखायी नहीं दिया। मार्ग बंद हो गया।

तुमने कृपा की, तुम्हारी कृपासे यह बात समझमें आने लगी कि तुम्हारे अभय चरणोंके आश्रयको छोड़कर कहीं भी सच्चा और स्थायी सुख नहीं है। चरणाश्रय प्राप्त

करनेके लिये कुछ प्रयत्न भी किया गया । अब भी प्रयत्न होता है और यह सत्य है कि इसीसे सुख-शान्ति और आरामके दर्शन भी होने लगे हैं, परंतु प्रभो ! पूर्वाभ्यासवश बार-बार यह मन विषयोंकी ओर चला जाता है । रोकनेकी चेष्टा भी करता हूँ, कभी-कभी रुकता भी है, परंतु जानेकी आदत छोड़ता नहीं ! तुम्हारे चरणोंके सिवा सर्वत्र भय-ही-भय छाया रहता है—दुःखोंका सागर ही लहराता रहता है. यह जानते, समझते और देखते हुए भी मन तुम्हें छोड़कर दूसरी ओर जाना नहीं छोड़ता ! इससे अधिक मेरे मनकी नीचता और क्या होगी मेरे दयामय स्वामी !

तुम दयालु हो, मेरी ओर न देखकर अपनी कृपासे ही मेरे इस दुष्ट मनको अपनी ओर खींच लो । इसे ऐसा जकड़कर बाँध लो कि यह कभी दूसरी ओर जा ही न सके । मेरे स्वामी ! ऐसा कब होगा ? कब मेरा यह मन तुम्हारे चरणोंके दर्शनोंमें ही तल्लीन हो रहेगा । कब यह तुम्हारी मनोहर मूरतिकी झाँकी कर-करके कृतार्थ होता रहेगा ।

अब देर न करो दयामय ! जीवन-संध्या समीप है इससे पहले-पहले ही तुम अपनी दिव्य ज्योतिसे जीवनमें नित्य प्रकाश फैला दो । इससे समुज्ज्वल बनाकर अपने मन्दिरमें ले चलो और सदाके लिये वहीं रहनेका स्थान देकर निहाल कर दो ।

दीनबन्धो !

इस मनके मनोरथोंको पूर्ण करनेके लिये मैंने क्या नहीं किया। जगह-जगह भटका, दर-दरकी धूल फाँकी, भाँति-भाँतिके नये-नये उद्योग किये, जिसने जो बताया, उसीमें लग गया, प्रारम्भके संयोग और तुम्हारी कृपासे समय-समयपर धन-पुत्र और मान-यश भी मिलते ही रहे; परंतु सब व्यर्थ, इस मनकी मुराद तो आजतक पूरी नहीं हुई, यह वैसा ही व्यस्त, वैसा ही अशान्त और चञ्चल बना है। बल्कि देखता हूँ—इसकी भूख और भी बढ़ गयी। मालूम होता है, यह किसी ऐसी चीजकी खोजमें है, जो अभावोंसे सर्वथा रहित हो, जिसके मिल जानेपर फिर किसी चीजकी चाह रहे ही नहीं। संतलोग कहते हैं कि वैसी चीज तो बस, एक तुम ही हो। और तुम्हारी प्राप्ति होती है तुम्हारी ही शरण होकर श्रद्धा-प्रेमके साथ तुम्हारा भजन करनेपर! परंतु तुम्हारा भजन मुझसे बनता नहीं। सोचता हूँ—सदा तुम्हारे भजनमें ही लगा रहूँ, सदा-सर्वदा तुम्हारा नाम-गुण-कीर्तन और मधुर ध्यान ही करता रहूँ। परंतु क्या बताऊँ, जब करने उठता हूँ, तब निराश हो जाता हूँ। उस समय न मालूम कहाँ-कहाँके विचार, कैसी-कैसी भूत-भविष्यकी चित्र-विचित्र भावनाएँ मनमें आ खड़ी होती हैं कि जिनसे क्षणभरके लिये भी मन शान्त और एकाग्र नहीं

हो पाता ! उन्हींके साथ-साथ उसी समय बाहरी कामोंका भी समूह आ डटता है। 'यह काम इसी समय न करनेसे अधर्म होगा', 'आदर्श नष्ट होगा', 'कर्तव्यकी अवहेलना होगी', 'निन्दा होगी', 'आर्थिक और सामाजिक हानि होगी' तथा 'करनेसे अमुक-अमुक लाभ होंगे'—इस प्रकारके भय और प्रलोभन भी उसी समय आकर उन कर्मोंमें बरबस लगा देते हैं। इस प्रकार मन और ज्ञानेन्द्रियोंके साथ-ही-साथ कर्मेन्द्रियोंमें भी हलचल मच जाती है।

प्रभो ! मैं क्या करूँ, कैसे तुम्हारा भजन करूँ, कुछ समझमें नहीं आता। स्वामिन् ! मैं दुर्बल हूँ, जानता हूँ, मन-इन्द्रियाँ आत्मासे बलवान् नहीं हैं, तथापि मैं तो आत्मस्वरूपके अज्ञानके कारण उनसे दबा ही रहता। अब तो बस, एकमात्र तुम्हारी कृपाशक्तिका ही सहारा है। मेरे नाथ ! ऐसी शक्ति दो जिससे तुम्हारे बलसे तुम्हारी असित महिमा, तुम्हारे अचिन्त्य सौहार्द, तुम्हारे प्रबल प्रभाव और तुम्हारे सहज दयाके बलसे मैं इन मन-इन्द्रियोंको जीतकर इन सबको, सब ओरसे, सब प्रकारसे केवल तुम्हारे भजनमें ही लगा दूँ और—जैसे गङ्गाकी धारा सारे बाधा-विघ्नोंको चूर-चूर करती हुई समुद्रकी ओर बिना रुके बहती रहती है, उसी प्रकार मेरे इस मनकी सारी वृत्तियाँ एकमुखी होकर बिना रुकावटके केवल तुम्हारी ही ओर बहती रहें। मैं तुम्हारा हो जाऊँ और तुम्हें अपना बनाकर धन्य हो जाऊँ।

मेरे प्राणोंके प्राण !

भोगोंमें सुख नहीं है, यह अनुभव बार-बार होता है; फिर भी मेरा दुष्ट मन उन्हींमें सुख मानता है और बार-बार तुमको भूलकर उन्हींकी ओर दौड़ता है। बहुत समझानेकी कोशिश करता हूँ, परंतु नहीं मानता। तुम्हारे स्वरूप-चिन्तनमें लगाना चाहता हूँ, कभी-कभी कुछ लगता-सा दीखता भी है, परंतु असलमें लगता नहीं। मैं तो जतन करके हार गया मेरे स्वामी ! अब तुम अपनी कृपा-शक्तिसे इसे खींच लो। मुझे ऐसा बना दो कि मैं सब प्रकारसे तुम्हारा ही हो जाऊँ। धन, ऐश्वर्य, मान जो कोई भी तुम्हारी ओर लगनेमें बाधक हों, उन्हें बलात्कारसे मुझसे छीन लो। मुझे चाहे राहका भिखारी बना दो, चाहे सबके द्वारा तिरस्कृत करा दो, परंतु अपनी पवित्र स्मृति मुझे दे दो। मैं बस, तुम्हारा स्मरण करता हुआ, तुम्हारे स्वरूप-गुणोंका चिन्तन करता हुआ निरन्तर सच्चे आनन्दमें निमग्न रहूँ ! मेरे सुख-दुःख, हानि-लाभ, सब कुछ तुम्हारी स्मृतिमें समा जाय। वे चाहे जैसे आयें-जायें, मैं सदा तुम्हारे प्रेममें डूबा रहूँ। सबमें, सब अवस्थाओंमें, सब भावनाओंमें, सब क्रियाओंमें और सारे सृजन-संहारमें केवल तुम्हारा अनुभव

करूँ। तुम्हारा ही प्यारा स्पर्श पाकर सदा उल्लसित होता रहूँ।

मेरे मनसे सब कुछ भुला दो और उस सब कुछके बदलेमें एकमात्र अपनी मधुर स्मृतिको ही जगाये रक्खो। कोई ऐसा क्षण हो ही नहीं, जिसमें मन तुम्हें भूल सके। यदि हो तो बस, जैसे मछली जलके बिना छटपटाकर मर जाती है, वैसे ही यह मन भी मर जाय।

मेरे प्राण सदा तुम्हारे साथ ही रहें, तुम्हारा बिछोह कभी हो ही नहीं। यदि कभी ऐसा हो तो बस, उसी क्षण तेलके अभावमें दीपकके बुझ जानेकी भाँति शान्त होकर तुममें समा जायँ।

मैं सदा अनुभव करूँ—तुम मेरे हो, मैं तुम्हारा हूँ। तुम मेरे साथ हो, मैं तुम्हारे साथ हूँ। तुम मुझे देख रहे हो, मैं तुम्हें देख रहा हूँ। तुम मुझे पकड़े हो, मैं तुम्हें पकड़े हूँ, तुम मुझे आलिङ्गन कर रहे हो, मैं तुम्हें आलिङ्गन कर रहा हूँ। तुम मुझमें समा रहे हो, मैं तुममें समा रहा हूँ। और तुम मुझमें हो, मैं तुममें हूँ।

मेरे प्रणोंके प्राण! अब देर न करो, बहुत समय बीत गया मुझे भटकते। तुम्हारा अपना ही होकर मैं जो इतनी दुर्दशामें पड़ा हूँ, यह तुमसे कैसे देखा जाता है? भगवन्! अब तो तुरंत दया करके अपनी परम दयाका अनुभव करा दो, मेरे स्वामी!

[५]

अन्तर्यामिन् !

मेरे मनकी कोई भी दशा तुमसे छिपी नहीं है। कितना गंदा है वह ! वृथा गर्व, दम्भ, काम, क्रोध, विषयासक्ति, ममता, मान, मद, लोभ आदि कोई ऐसा दोष नहीं है, जिसने उसमें अपना डेरा न जमा रक्खा हो। बुद्धि कहती है, इनका रहना अच्छा नहीं है। ये लोक-परलोक दोनोंको बिगाड़नेवाले बड़े बुरे बैरी हैं। परंतु क्या करूँ! चेष्टा करनेपर भी ये मेरा पिण्ड नहीं छोड़ते। सर्वशक्तिमान् ! मैं तो हार गया हूँ इनसे, और अपने पुरुषार्थसे सर्वथा निराश

होकर तुम्हारी शरण आया हूँ। तुम्हारी शक्ति अतुल है। अब तो मेरे इन सदा दुःख देनेवाले दोषोंका शीघ्र ही नाश करके मनको पवित्र बना दो मेरे मालिक ! सचमुच मैं इनके मारे बेमौत मरा जा रहा हूँ, बचाओ--जल्दी बचाओ !

दीनबन्धो ! तुम्हें छोड़कर दीन-हीन और किसके दरवाजेपर जायँ । ऐसा कौन है, जो दीन-हीन-कंगाल, कुकर्मियोंपर स्नेह बरसाकर उन्हें आश्रय दे और अपनी कृपाशक्तिसे ही उनकी सारी दीनता, दरिद्रता, कुचेष्टा और कुप्रवृत्तिको मिटाकर उन्हें सुखी, सम्पन्न और सदाचारी बना दे ? मैं जो तुमसे यह प्रार्थना कर रहा हूँ, यह भी असलमें तुम्हारी दयाका प्रभाव न समझनेका ही परिणाम है। तुम तो अहैतुक दयालु हो। मुझपर तो तुम्हारी असीम, अनन्त दया है। मुझसे बदलेमें तुम कभी कुछ भी नहीं पाते ? परंतु तुम तो सभी तरहसे सदा-सर्वदा मुझपर अपनी दया बरसाते रहते हो। मैं कैसे सुखी और सदाचारी रहूँ, कैसे आनन्द और शान्ति प्राप्त करूँ, तुम रात-दिन वही कर रहे हो। अपने अबतकके जीवनकी घटनाओंको याद करता हूँ और अपनी नीचता एवं तुम्हारी नित्य एक-सी अनन्त दयालुताका विचार करता हूँ तो हृदय कृतज्ञतासे भर जाता है। कहाँ मैं दुर्विनीत, दुर्बुद्धि, दुराचारी, दुष्ट प्रकृतिका दरिद्र, क्षुद्र प्राणी और कहाँ तुम महामहिम सर्वलोकमहेश्वर साक्षात् भगवान् ! परंतु तुमने तो मुझको कभी नहीं भुलाया,

कभी मेरा साथ नहीं छोड़ा। विपत्तियोंकी उन घड़ियोंमें जिस समय संसारमें सहारा देनेवाला मेरा कोई भी साथी नहीं था, कुविचारके उन क्षणोंमें, जब मैं पाप-प्रवृत्तिमें पड़कर अतल नरक-कुण्डमें गिरना ही चाहता था, तुमने किस विलक्षण कौशलसे, कितनी शीघ्रतासे मुझे सहारा दिया—बचाया और उठाकर अपनी स्नेह-सुधासे सींचकर सुखी कर दिया। एक बार नहीं, बार-बार; यह कोई पुरानी बात नहीं। अब भी तो रोज-रोज तुम यही कर रहे हो! मैं अपने पाजीपनसे बाज नहीं आता और तुम अपने अनोखे विरुदसे कभी विच्युत नहीं होते। धन्य मेरे स्वामी!

दयामय! मैं कितना नीच हूँ, जो तुम्हारी इतनी और ऐसी अहेतुकी दयाको देख-देखकर भी भूल जाता हूँ। तुम्हारे चरणोंमें लोटकर केवल उन्हींको अपने प्राणोंके प्राण, जीवनके जीवन नहीं बना लेता। तुम मेरी नीचताकी ओर न देखना! कहाँ देखते हो! मुझ-सा नीच कौन होगा? मेरी नीचताकी ओर देखते तो इतना स्नेह, इतना प्यार कैसे दे सकते। अब तो प्रभो! यह करो और तुरंत ही करो--(क्योंकि पता नहीं यह क्षुद्र-सा मेरा जीवन-दीपक किस क्षण बुझ जाय,) कि मैं तुम्हारी कृपाको कभी भूलूँ ही नहीं और प्रतिक्षण कृतज्ञतापूर्ण हृदयसे तुम्हारे पावन चरणोंका स्मरण करता हुआ तुम्हारे दरवाजेपर ही पड़ा रहूँ!

मेरे स्वामी !

जीवनके दिन तो बीते चले जा रहे हैं। वह दिन कब होगा जब मैं तन-मन-धन, घर, संसार सबकी परवा छोड़कर केवल तुम्हारे भजनमें ही लगा रहूँगा। बहुत बार ऐसा सोचता हूँ, परंतु कर नहीं पाता। समय बीत रहा है। सब ओर, सभी वस्तुओं और स्थितियोंमें परिवर्तन हो रहा है, जो आज है वह कल नहीं दीखता। किसी भी स्थितिमें सच्चे सुखके दर्शन नहीं होते। अपनी भावनाके अनुसार निरन्तर कल्पित सुख-दुःखके सागरमें डूबता-उतराता रहता हूँ। जानता हूँ—खूब समझता हूँ कि यह सब कुछ विनाशी है तथापि इनसे मुँह मोड़कर तुम्हारे नित्य-नव-सुन्दर स्वरूप, नित्य कल्याणमय नाम और नित्य सत्य निर्भय पदका आश्रय नहीं ले पाता। प्रभो ! मेरी यह मोह-निद्रा कब भंग होगी ? दिन-रात चित्त अशान्त रहता है। नाना प्रकारकी कल्पनाएँ मनको सर्वथा वैसे ही क्षुब्ध बनाये रखती हैं, जैसे भीषण तूफानके कारण आकाशमें उछलती हुई ऊँची-ऊँची तरङ्गें समुद्रको !

मेरे स्वामी ! मैं इस अशान्तिसे कब छुटकारा पाऊँगा ? कब मैं जाति, कुल, विद्या, रूप, कीर्ति, सम्पत्ति, स्थिति और साधनाके अभिमानसे छूटकर तुम्हारे चरणोंपर अपनेको न्योछावर कर सकूँगा ? तुम्हारे ही परम बलसे बलवान् और

परम धनसे धनवान् होकर कब मैं सारे अभावोंके अभावका शान्तिमय अनुभव कर सकूँगा ?

दीनबन्धो ! मैं यह पढ़ता-सुनता हूँ, कहता हूँ और कभी-कभी विवेकके जागनेपर ऐसा देखता भी हूँ कि सर्वत्र, सभी स्थानों, स्थितियों और क्रियाओंमें तुम्हीं भरे हो। तुम्हारी ही स्वरूपभूता मङ्गलमयी अनिच्छामयी इच्छासे यह सारा खेल हो रहा है। मोहभरी आँखोंसे जहाँ अमङ्गल दीखता है, वहाँ भी तुम्हारा मङ्गलमय विधान ही काम कर रहा है। जन्म-मृत्यु, सुख-दुःख, संयोग-वियोग, लाभ-अलाभ, अनुकूलता-प्रतिकूलता—सभीमें तुम्हारा मङ्गलमय करस्पर्श प्राप्त होता है। सब कुछ तुमसे ही निकला है, तुममें ही वर्तमान है और तुम्हींमें लय हो जायगा। आगे-पीछे और अभी बीचमें केवल तुम-ही-तुम हो। तुम्हारी स्वाभाविकी स्वरूपमयी करुणा सभी जीवोंपर सदा बरस रही है और उनका महामङ्गल कर रही है; परंतु नाथ ! मैं इस सत्यको यथार्थरूपमें ग्रहण नहीं कर पाता ! वरं अज्ञानवश नाना प्रकारकी कल्पना करके सुखी-दुःखी होता रहता हूँ।

प्रभो ! अब ऐसी कृपा हो जिससे मेरे इस अज्ञानका पर्दा फट जाय, मोहका आवरण हट जाय और मैं तुम्हारे स्वरूप और तुम्हारे खेलको समझकर तुम्हारा अपना बन जाऊँ। नहीं तो, प्रभो ! यही कर दो कि मेरे मनमें भली-बुरी कोई इच्छा ही न रहे, मैं कुछ भी न चाहूँ। तुम्हारी इच्छा हो सो करो, तुम जो चाहो सो होने दो; और मैं, तुम जिस स्थितिमें जैसे भी रक्खो, उसीमें रहकर सदा तुम्हारा नाम रटता रहूँ !

[७]

भगवन् !

मैंने सुना है, तुम्हारे चरणोंकी शरणमें बड़ा ही सुख है, जो शरण हो जाता है उसे विनाशका, वियोगका, अभावका, शत्रुओंका, पाप-तापका, देव-दानवका, कल्पना-जल्पनाका, माया-मोहका, अहंता-ममताका, आसक्ति-कामनाका, क्रोध-लोभका—किसी प्रकारका भय नहीं रह जाता। यहाँतक कि वह भयकी कल्पनासे ही मुक्त हो जाता है; दुःख तो सारा भयमें ही है। सुना है प्यारे ! तुम्हारे मुसकराते हुए मनोहर मुखकी अनुपम छटाकी बात तो दूर रही, जो तुम्हारे चरणतलसे अङ्कित भूमिके दर्शन कर पाता

है, वहाँ आनन्दसागरमें निमग्न हो जाता है; और तुम्हारे वे चरणतल चाहनेपर ही मिल सकते हैं। ऐसा होनेपर भी हे मेरे सर्वस्व ! क्या बात है जो परम सुखदायक तुम्हारे चरणोंकी शरण छोड़कर और परम आनन्दमय तुम्हारे चरण-तलकी चाह छोड़कर मनुष्य इधर-उधर भटकता है, धक्के खाता है, नरकोंमें जाता है और दुःखका भीषण भार उठाता है ? समझा— प्रभो ! मनुष्यका अज्ञान ही इसमें प्रधान कारण है। पर क्या कभी यह अज्ञान मनुष्यके मिटाये सहज ही मिट सकता है ? मेरी तुच्छ समझमें तो यही आता है कि जब तुम इस अज्ञानको हरना चाहोगे, तभी इस अज्ञानका नाश होगा। फिर यह अज्ञान तुम अभी हर क्यों नहीं लेते ? तुम्हारा इसमें जाता ही क्या है ? भूल गया—नाथ ! ऐसी प्रार्थना करके तो मैं मानो अपनेको तुमसे अधिक बुद्धिमान् और दयालु सिद्ध करना चाहता हूँ। मानो मनुष्योंके दुःखभारसे मैं ही व्याकुल हूँ, तुम्हें इसकी कोई खबर ही नहीं ! पर क्या करूँ ? मुझको भासनेवाली तुम्हारी उदासीनता ऐसा करनेपर मजबूर कर रही है। अवश्य ही यह भी मेरा अपराध है ! जो कुछ भी हो, इस अपराधसे छूटना बहुत कठिन है। कोई बात नहीं प्रभो ! इस भयानक अपराधके लिये मुझे मनमाना दण्ड दे दो, परंतु अपराधीकी कातर प्रार्थनाको सुनकर दुःख-तापसे तपते हुए जीवोंके अज्ञानको हरकर उन्हें अपने चरणोंकी शरणमें ले लो और उनके मनोंमें ऐसी चाह उत्पन्न कर दो कि वे सब कुछ भूलकर केवल

तुम्हारे ऋषि-मुनि-दुर्लभ चरणतलोंके दर्शनकी ही चाह करने लगें।

प्रभो ! हमारी ओर देखनेसे—हमारे साधन और पुरुषार्थकी प्रतीक्षामें चुप रहनेसे तो हमारा कभी इस दुःखभारसे छुटकारा नहीं होगा। तुम अपनी ओर देखो, अपने विरुदकी ओर देखो। अपनी कृपा-सुधा-वारिसे ही हमारे कलुषित हृदयको धोकर उसे अमृतमय बना दो। यह सच है कि हम वस्तुतः साधनहीन होकर भी अपनेको सिद्ध मानते हैं, कम-से-कम स्वीकार तो कर ही लेते हैं। यह हमारा अपराध है, इस अपराधकी ओर देखोगे तो हम कभी तुम्हारी ओर ताक भी नहीं सकेंगे। यह एक ही क्यों, हमारे तो सहस्रों अपराध हैं, हम तो अपराधोंके समुद्र ही हैं। हमने अबतक और किया ही क्या है ? ये अपराध तो तुम्हें जला देने पड़ेंगे अपनी कृपा-ज्योतिसे ही। मैंने सुना है कि तुम्हारी कृपा हमपर असीम है—और वह कृपाज्योति हमारे पापोंको जलाकर हमारे काले हृदयको ज्योतिर्मय बना ही रही है, परंतु क्या करें, इसपर हमें विश्वास कहाँ होता है ? जो कुछ भी हो, प्रभो ! ऐसा करो कि इन सभी बातोंके लिये अब तो मैं सब तरहसे तुम्हारे ही चरणोंपर निर्भर रहूँ। तुम जो चाहो; जैसे चाहो वैसे ही करो। बस, यही वरदान दो कि मेरी यह—इस समयकी धारणा—तुम्हारे चरणोंकी निर्भरता अजर-अमर हो जाय !

करुणामय !

तुम्हारा स्मरण, भजन और ध्यान करना चाहता हूँ, कई बार बुद्धि ऐसा निश्चय-सा करती है कि अब तमाम जीवन तुम्हारे भजन-स्मरणमें ही बिताना चाहिये । इस निश्चयके अनुसार चेष्टा करता हूँ, भजन-स्मरण आरम्भ करता हूँ, परंतु थोड़े ही क्षणोंमें देखता हूँ, चित्त कहीं-का-कहीं चला गया है । कुछ खेद भी होता है, परंतु उत्साह टूट जाता है, उधर संसारकी वासनाएँ खींचती ही हैं, भजन-स्मरण कुछ नहीं बनता । दीनबन्धो ! तुम्हीं कृपा करके ऐसी

शक्ति दो, जिससे तुम्हारा भजन-स्मरण ही मेरे जीवनका एकमात्र कार्य हो जाय।

भगवन् ! जब किसीके मरनेकी बात सुनता हूँ, तब कुछ कालके लिये मनमें वैराग्य-सा आता है; सोचता हूँ, मैं भी ऐसे ही मर जाऊँगा। विषयोंसे निराशा-सी होती है, तुम्हारी ओर बुद्धि जाती है, परंतु क्या कहूँ मेरे अन्तर्यामी ! तुम तो सब कुछ जानते ही हो, कुछ भी हो, कुछ समयके बाद वैराग्यका कहीं नाम भी नहीं रहता, मन पूर्ववत् विषय-सेवनमें लग जाता है। हे नाथ ! तुम कृपा करके ऐसी शक्ति दो जिससे मैं विषयासक्तिसे पिण्ड छुड़ाकर तुम्हारी ओर अपने मनको निरन्तर लगाये रख सकूँ, तुम्हारा चिन्तन ही मेरे जीवनका आधार बन जाय।

करुणामय ! तुम जानते हो मैं कितना दुखी हूँ, दिन-रात अशान्तिकी आगमें जलता हूँ; प्राप्तके विनाशकी चिन्ता और अप्राप्तको प्राप्त करनेकी अभिलाषा दिन-रात मेरे हृदयमें ज्वाला-सी जलाये रखती है। मैं जब कुछ पाता हूँ, तब तो आग उलटी बढ़ जाती है। प्रभो ! मेरी इस सदा संताप देनेवाली आगको बुझाकर मुझे शान्ति दो। आग जले भी तो बस, तुम्हारे विरहकी ही। मैं दिन-रात हे मेरे जीवनधन ! तुम्हारे आगमनकी प्रतीक्षामें, तुम्हारे सौन्दर्य-माधुर्य-रसपूर्ण मुखड़ेको निरखनेकी आशामें ही प्रत्येक क्षण तुम्हारा स्मरण करता हुआ जीवन धारण करूँ।

हे मेरे राम ! तुम तो मेरे मनमें भी रम ही रहे हो। खूब जानते हो कि मेरी इस प्रार्थनामें कितनी सचाई है और कितना दम्भ है। सचाई होती तो हे सत्य ! हे सत्यप्रिय ! तुम मुझे दर्शन देनेमें इतना विलम्ब ही क्यों करते ? हे असुरारि ! मेरे हृदयमें निवास करनेवाले इस दम्भासुरका शीघ्र-से-शीघ्र विनाश क्यों नहीं कर देते ? फिर तो तुम्हारे लिये मनमें सचाई आवेगी ही और फिर यह जीवन तुम्हें पाकर कृतार्थ भी हो जायगा।

मेरे सर्वस्व ! मैं बस, तुम्हें ही जीवनका सर्वस्व मानूँ ! तुम्हें ही अपने आत्माका आत्मा, ईश्वरोंका ईश्वर, गुरुओंका गुरु, धर्मोंका धर्म, सत्यका सत्य, ज्ञानका ज्ञान, वैराग्यका वैराग्य, ऐश्वर्यका ऐश्वर्य, माधुर्यका माधुर्य, सौन्दर्य-का सौन्दर्य मानूँ और सब प्रकारसे तुम्हारे ही लिये तरसूँ। अथवा तुम प्राप्त होओ या न होओ, अपना मोहन मुखड़ा दिखलाओ या न दिखलाओ, मैं बिना किसी उकताहटके, बिना किसी शर्तके, बिना किसी आशाके, बिना किसी अधैर्यके तुम्हारा, बस तुम्हारा ही स्मरण करता रहूँ और इस बातकी कभी सुधि ही न आवे कि स्मरण क्यों करता हूँ। बस, यही वरदान दो मेरे स्वामी !

तन मन धन अर्पन कियों, सब तुमपै ब्रजराज।
मन भावै सोई करौ, हाथ तुम्हारे लाज ॥

मेरे कृपामय स्वामी !

तुम्हारी कृपासे जिस समय मैं पहले-पहल साधनामें लगा था, उस समय मेरा भाव बहुत सुन्दर था । मैं समझता-सोचता था—'सारा संसार भगवान्‌से भरा है। सब कुछ उन्हींकी प्रेरणासे होता है और सर्वत्र उन्हींकी शक्ति काम करती है। भगवान् ही मेरे जीवनके एकमात्र लक्ष्य हैं । मैं निरन्तर भगवान्‌का स्मरण करता हुआ अपने सारे कर्म केवल भगवान्‌के लिये ही करूँगा। मेरी बुद्धि, मेरा मन और मेरी सारी इन्द्रियाँ केवल भगवान्‌की सेवामें ही लगी रहेंगी और मैं पल-पलमें भगवान्‌के मधुर प्रेमका दिव्य स्वाद ले-लेकर मस्त होता रहूँगा। परंतु आज तो कुछ दूसरी ही बात हो गयी ! तुम्हारे बिराजनेके पवित्र आसनपर मैं मोहवश अपने इन अनित्य, अपवित्र और पापकलुषित नाम-रूपको बैठाकर इन्हींकी पूजा करना-कराना चाहता हूँ । मेरी प्रत्येक चेष्टामें आज ममता, अभिमान और आसक्तिका नंगा नाच हो रहा है । संसारके भोगोंमें मेरे मन-प्राण इतने रम गये हैं कि उनमें कभी दोषबुद्धि भी नहीं होती, फिर असत्-बुद्धि तो कहाँसे होती ! जब तुम्हारा प्यारा स्मरण करने बैठता हूँ, तभी भोगोंके विचित्र-विचित्र चित्र चित्तके सामने दल-के-दल आ जाते हैं और मैं तुम्हें भूलकर उन्हींको देखने लगता हूँ, और उन्हींमें रम जाता हूँ । भगवन् ! ऐसा क्यों हो गया ? सचमुच प्रभो ! मैं पतनकी ओर बढ़ा जा रहा हूँ । विद्या, बुद्धि और ज्ञानका अभिमान मुझसे न मालूम

कितनी बार पूजनीयोंका अपमान कराता है ! अधिकार, प्रतिष्ठा, सम्मान और सुख्यातिके जादूने इतना प्रभाव जमाया है कि तुम्हारे पवित्र स्मरणकी भी आवश्यकता मन नहीं अनुभव करता और न तुम्हें भूल जानेपर वह कभी पश्चात्ताप ही करता है। दुःख तो यह है, कभी-कभी यह सब 'ज्ञान' के नामपर होता है। मेरी धृष्टता और नीचताका पार नहीं है। प्रभो ! मेरी यह दुर्दशा कब-तक रहेगी ? हाय ! हाय ! मेरे मालिक ! मुझे बताओ, मेरी इस दयनीय दशाकी ओर दयादृष्टिसे देखो। दया करो ! मेरा सारा पुरुषार्थ व्यर्थ हो गया। संसारके सुख, धन-मान, कीर्ति आदिके प्रलोभनोंने मेरी साधनाको नष्ट कर डाला। मैं आज पुरुषार्थ-हीन हूँ। अब बस, तुम्हारा ही भरोसा है। मैं जान गया, जो कुछ भी होगा तुम्हारी कृपासे ही होगा। तुम अपनी कृपाशक्तिसे मेरे सारे अनर्थकारी मनोरथ-महलोंको ढहा दो; मेरे सारे अभावोंके अनुभवोंका सर्वथा अभाव कर दो। मेरा मन नित्य-निरन्तर तुम्हारे मधुर रूप, अप्रतिम गुण और पावन नामपर मतवाला हुआ रहे। मेरी बुद्धि सदा-सर्वदा तुम्हारे तत्त्वचिन्तनमें ही लगी रहे। मेरी इन्द्रियाँ सर्वत्र सब ओरसे केवल तुम्हारी ही सेवामें संलग्न रहें। मेरी सारी ममता, सारी आसक्ति सब ओरसे सिमट-कर एकमात्र तुम्हींमें आकर स्थिर हो जाय। असलमें मेरे मन, बुद्धि और इन्द्रियोंपर, अहंकारपर और आत्मापर—सबपर सब कुछपर एकमात्र तुम्हारा ही अधिकार हो जाय। तुम मुझे सब प्रकारसे अपना लो मेरे कृपामय स्वामी !

[१०]

कृपासिन्धो !

तुम्हारी कितनी असीम कृपा है जीवोंपर। कभी चुपकेसे प्रेरणा करते हो, कभी झलक-सी दिखाकर बुलाते हो, कभी हाथ पकड़कर खींचते हो, कभी जोरसे थप्पड़ लगाकर अपनी ओर मुँह कराना चाहते हो, कभी पुचकारते हो, खुशामद करते हो, कभी माकी तरह लालच देकर पास बुलाना चाहते हो, कभी रोनेका स्वाँग भरते हो, कभी गाढ़े मित्रकी तरह समझा-बुझाकर कुपथसे हटाकर अपने मार्गपर लाना चाहते हो और कभी दुःख-क्लेशकी बिजली कड़काकर सचेत करते हो। पता नहीं, कब-कब किस-किस तरहसे तुम मुझको अपनी संनिधिमें लेना चाहते हो; पर मैं ऐसा नीच और नालायक हूँ कि सदा तुमसे आड़े-कतरे ही रहता हूँ, तुम कभी सामने आ भी जाते हो, तो मैं चोरकी भाँति आँख बचाकर भाग निकलना चाहता हूँ। मालूम होता है, तुम कहीं फँसा लोगे तो मेरा सोनेका संसार नष्ट

हो जायगा। हाय रे नीच मन ! जो सदा-सर्वदा चारों ओरसे देना चाहता है, उसके प्रति कृतज्ञ होना तो दूर रहा, उसका भजन-सेवन करना तो दूर रहा, उसकी कृपासरिताके प्रवाहको सीधा अपनी ओर आने भी नहीं देता ! कितनी-कितनी अड़चनें डालता है, कैसे-कैसे बहाने बनाता है, कैसी-कैसी भयानक कल्पनाओंकी सृष्टि करके भयंकर भयके भूत खड़े कर देता है। प्रभो ! इस मेरे कुटिल और कुत्सित मनसे कैसे छुटकारा मिले। तुम्हारी कृपाका ही भरोसा है। मैं तो नीचातिनीच हूँ, तुम्हारी कृपाकी अवहेलना ही करता हूँ, उसके प्रवाहको रोकनेके लिये नित नये बाँध ही बाँधा करता हूँ, पर जो महाभाग पुरुष तुम्हारा भजन करते हैं, तुम्हारा आराधन करते हैं, तुम्हारी सेवा करते हैं, वे क्या तुम्हारी कृपाके बदलेमें उसी प्रकारके महत्त्वकी कोई वस्तु दे पाते हैं ? नहीं, नहीं ! कदापि नहीं ! मनुष्यके पास है ही क्या, जिसे देकर वह बदलेमें तुम्हारी महान् महनीय कृपाको पानेका दावा करेगा। यह तो तुम्हारी कृपाशक्ति ही है, जो कहीं जरा-सा भी मार्ग मिल जाता है तो स्वयमेव ही कृतार्थ करनेके लिये आ पहुँचती है। मानो, वह प्रतिक्षण प्रतीक्षा ही करती रहती है। कृपानाथ ! तुम्हारा श्रीविग्रह कृपासे ही बना हुआ है। उसमें कृपा-ही-कृपा भरी है। इस नीच अधम दम्भके पुतलेको बस, एकमात्र तुम्हारी अहैतुकी कृपाका ही भरोसा है नाथ !

मेरे नाथ !

लड़कपनसे अबतककी बातें याद करता हूँ तो अपने पापोंकी, अपराधोंकी, गुनाहोंकी, मूर्खताकी, विषयासक्तिकी, काम-क्रोध-लोभके वशमें होकर पतित होनेकी और मृत्युके समीप पहुँचानेवाली घटनाओंकी—कितनी ही बातें याद आती हैं। साथ ही यह भी याद आता है, तुमने किस आश्चर्यजनकरूपसे, किस त्वरासे, किस आत्मीयतासे मेरी प्रायः सभी जगह रक्षा की। एक बार तो पतित हो ही गया था; तुम यदि क्षणभर भी विलम्ब करते तो पता नहीं मेरी कैसी बुरी दशा होती। बड़े-बड़े प्रलोभनोंसे तुमने कैसे मुझे बचाया नाथ ! तुम्हारी दया और प्रेमकी एक-एक बात ऐसी है कि उन्हें याद करके हृदय गद्गद हो जाता है। आँखें मूँदे विषय-विलासकी ओर दौड़े आते हुए मुझको तुमने कैसे रोका। बहने जा रहा था अत्यन्त तीव्र धारावाली लोभकी नदीमें कूद चुका था और धाराके समीप जा पहुँचा था। परंतु तुमने किस कौशलसे तुरंत वहाँ बाँध बाँध दिया और धीरेसे गोदमें उठाकर मुझे उबार लिया। उस बार कैसी भीषण आँधी थी। चारों ओर अन्धकार-ही-अन्धकार था।

हाथको हाथ नहीं सूझ रहा था। मैं कितना व्याकुल था उस समय। कितना असहाय और दीन था। अहा! तुम कितने दयालु हो, पता नहीं कैसे उसी क्षण वहाँ पहुँच गये और अपने दिव्य प्रकाशसे तुरंत सारे अन्धकारका नाश करके मुझे भीषण मृत्युके मुखसे बचा लिया। तुम न आते तो मैं कभीका डूब गया होता!

मेरे स्वामी! तुम्हें तो याद है ही, मेरा विश्वास किस प्रकार हिल गया था। मैं क्या करनेपर उतारू हो गया था। यदि जरा भी विलम्ब तुम्हारी ओरसे होता तो पता नहीं, मैं क्या कर बैठता और फिर सिवा पश्चात्तापकी आगमें जलनेके और कोई भी उपाय नहीं रह जाता!

मैं तो जालमें फँस ही गया था, तुमने कैसी-कैसी करामात करके मुझे निकाला। तुम्हारी उस समयकी वह मोहनी और भयावनी आकृतियाँ मुझे जब-जब याद आती हैं, मेरा रोम-रोम नाच उठता है। मैं क्या बताऊँ? मेरे समान नीच, दुरात्मा, कृतघ्न, बेईमान और स्वामिद्रोही और कौन होगा। पर मेरे नाथ! तुम्हारे समान दयालु और क्षमाशील तो दूसरा कोई कहीं भी नहीं है और न हो ही सकता है। बार-बार वही भूलें, वही अपराध, वही पाप, वही बेईमानी और वही अश्रद्धा—पर तुमने मानो इनकी ओर देखना ही छोड़ रक्खा है। सब प्रकारसे, सब ओरसे सदा-सर्वदा मानो मेरी बिगड़ी बनानेमें ही लगे रहते हो।

कभी क्षणभरके लिये असावधान नहीं रहते। मैं घरमें, राहमें, देशमें, परदेशमें, दिनमें, रात्रिमें, मनसे, वाणीसे, शरीरसे पता नहीं, कब कैसी क्या भूल कर बैठता हूँ। पर देखता हूँ, भूल हुई कि तुम उसे सुधार करनेको तैयार ! दाग जमने नहीं पाता कि उससे पहले ही उसे तुम धो डालते हो !

अपराध करना स्वभाव मेरा, क्षमा तुम्हारा है सहज बाना।
अनादि युगसे यह चाल मेरी, अपराध करना औ क्षमा पाना॥

पर नाथ ! मैं एक बात पूछता हूँ; मैं बारंबार अपराधकी कालिमा लगाता हूँ और बार-बार तुम उसे धोते हो ! क्या इससे यह अच्छा नहीं कि मैं अपराध करूँ ही नहीं। तुम कहोगे—'मत करो, कौन कहता है करो।' पर नाथ ! यह जानते हुए भी कि मेरे दयालु स्वामी मुझ नगण्यको धोया-पोंछा रखनेके लिये कितने सतत सावधान और प्रयत्नशील रहनेको बाध्य होते हैं, मैं स्वभाववश अपराध करता ही रहता हूँ। दयामय ! अब यह तुम्हारे ही किये दूर होगा, मेरी तुमसे यह कातर प्रार्थना है। प्रभो ! अपनी कृपाशक्तिसे मेरे अपराध-संस्कार-वृक्षकी जड़ ही काट डालो, जिससे सदा-सर्वदा मेरा हृदय इतना स्वच्छ, पवित्र और सुन्दर रहे कि तुम उसमें निर्बाध तथा सुखपूर्वक सदा विराजित रह सको। मेरी यह प्रार्थना अवश्य पूरी कर दो मेरे दयार्णव !

[१२]

मेरे प्राणदेवता !

मेरे जागतिक अभावोंकी तो कोई सीमा नहीं है, दिन-रात उन अभावोंके दूर करनेमें ही लगा रहता हूँ, पर यह सब करना पड़ता है बाध्य होकर रूखे चित्तसे ! लेकिन रात-दिन इसीमें बीत जाते हैं। समय ही नहीं मिलता कि जिसमें कुछ देर एकान्तमें बैठकर तुम्हारी बातें सोचूँ, तुम्हारी गुणावलीका श्रवण-कीर्तन करूँ, ध्यानमें तुम्हें बुलाकर अपनी बात सुनाऊँ और तुम्हारी सुनूँ। मन बहुत करता है, पर अभावोंकी पूर्तिके प्रयासमें अवकाश ही जो नहीं मिलता। क्या करूँ ? जिन विषयोंके लिये इतना प्रयत्नशील हूँ, उनके प्रति कोई आसक्ति या प्रीति नहीं है, मनका फँसाव या खिंचाव भी नहीं है। इतना होनेपर भी मैं उन्हींमें लगा हूँ। मालूम होता है, यह सब तुम्हारी ही करामात है ! तुम्हींने बाध्य किया है उनमें लगे रहनेको। पर बार-बार तुम्हारी याद तो आती ही है। यह भी निश्चय दीखता है कि तुम यदि मिल जाते तो यह सारी प्रपञ्चकी बातें सहज ही छूट जातीं। असलमें, भाई ! तुम्हारे मुखकी ओर देखकर ही तो मैं तुम्हारे संसारमें लग रहा हूँ। हाँ, यह अवश्य मेरी त्रुटि

है कि मैं तुम्हारे इस संसारको सदा-सर्वदा तुमसे भरा हुआ, तुम्हारे आनन्दसे भरा हुआ, तुम्हारी मधुरतासे भरा हुआ नहीं देख पाता; इसे यदि मैं तुम्हारे साथ मिलाकर देख पाता या इसके रूपमें तुम्हींको देख पाता, तब तो फिर यह प्रपञ्च या झंझट प्रतीत ही क्यों होता ? फिर तो यह सुखमय, आनन्द-मय, मधुमय ही हो जाता। मैं समझता हूँ संसार तुम्हींसे बना है और तुम्हींसे सना है। इसको तुमसे अलग देखना उचित नहीं है, इसे यथार्थरूपमें देखना नहीं है। संसारमें भी तुम्हारे माधुर्यको, तुम्हारे सौन्दर्यको, तुम्हारे ऐश्वर्यको, तुम्हारी शान्तिको देखना चाहिये, तभी तुम्हारे सर्वत्र दर्शन सिद्ध होते हैं। पर सत्य कहता हूँ, मुझसे ऐसा हो नहीं पाता। मैं चौबीसों घंटे संसारमें रहता हूँ, पर संसार मुझको तुमसे पृथक् एक जंजाल, एक छलना, एक यातना, एक क्लेश-सा दिखायी देता है। इसमें कोई रस नहीं आता। तुम चाहते हो इसलिये मैं संसारमें हूँ। तुम न चाहते तो कैसे रहता ? पर मेरा मन तो यही चाहता है कि तुम मिल जाओ और यह जंजाल छूट जाय ! क्या करूँ, मेरा 'अहम्' और मेरा 'मम' मुझसे नहीं छूटता। मेरे प्राणदेवता ! अब तुम्हीं इसका कोई उपाय करो। दोमेंसे एक जरूर करो, या तो संसारसे अलग करके मुझे अकेले अपनी सन्निधिमें ले लो, नहीं तो संसारके कण-कणमें सदा-सर्वदा अपने स्वरूपका दर्शन करा दो। फिर तुम्हें कोई उलाहना नहीं दूँगा मेरे स्वामी !

मेरे प्राणधन !

तुम्हारी कितनी कृपा है, कितनी प्रीति है और कितनी स्नेहभरी आत्मीयता है मुझपर ! मैं तुम्हें भूल जाना चाहता हूँ, भूल जाता हूँ। 'सुत-वित-दार-भवन-ममता-निसि' में गाढ़ी नींदके खुर्राटे लेने लगता हूँ; जगत्के धन-जन, मान-प्रतिष्ठा, पद-गौरवके रौरवमें डूबकर उसीमें सुख मान लेता हूँ और तुम्हें कभी भूलकर भी याद नहीं करता; परंतु तुम ऐसे चतुर सुहृद् हो कि जाने कैसे कहाँसे सहसा सामने आ जाते हो। ऐसे भयानक वेशमें आते हो कि मैं डरकर सहम जाता हूँ। विपत्तियोंके समुद्रकी उत्ताल तरंगें उछलने लगती हैं, घनघोर घटा छा जाती है, चारों ओर भीषण अन्धकार फैल जाता है, हाथको हाथ नहीं सूझता, बिजली कड़कने लगती है, चारों ओरसे पत्थर बरसने लगता है। मेरा बड़े जतनसे बनाया हुआ घर चूर-चूर होने लगता है। मैं रोता हूँ, चिल्लाता हूँ, पर मुझे उस समय कहीं कोई सहायक नहीं दीखता। जिस सांसारिक सम्पत्तिको मैं सुख-शान्ति समझे हुए था, जिसमें तन्मय हो रहा था, उस सारी सम्पत्तिको—सारे धन-मानको पलक मारते-मारते हरकर तुम बड़े भीषणरूपमें सामने खड़े हो जाते हो, बड़ा भय दिखलाते हो। एक बार तो ऐसा मालूम होता है—सहसा मुँहसे निकल पड़ता है कि तुम बड़े अन्यायी

हो, कितना अत्याचार करते हो । मेरे नन्हें-से बगीचेकी हरियाली तुम्हें नहीं सुहायी । तुमने क्षणोंमें उसे उजाड़ दिया ! मेरे लिये तो मानो महाप्रलय ही हो गयी ! मेरा धन, मेरा मान-सम्मान, मेरा प्यारा परिवार सब छीन लिया तुमने, तुम बड़े ही क्रूर हो, निर्दय हो, स्वेच्छाचारी हो । पर इसी व्याकुलतामें, इसी घने अन्धकारमें सहसा तुम्हारी स्निग्ध मधुर नवज्योतिकी स्मितसुधामयी किरणछटा दिखलायी देती है । देखते-ही-देखते हे नित्य सुन्दर, नित्य मधुर ! तुम्हारी प्रेमोज्ज्वल प्रसन्न मूर्ति प्रकट हो जाती है, तुम बड़े ही मधुर वेशमें स्मितसुन्दर प्रफुल्लवदनसे, स्नेहपूर्ण मधुर दृष्टिसे मेरी ओर देखते हुए मेरे चिबुकपर सहसा अपना कोमल करस्पर्श कराकर मुझे सान्त्वना देने लगते हो । कहते हो—'तुम मुझे भूल गये थे भैया ! कहाँ किस प्रतिकूल प्रवाहमें बहे जा रहे थे । दुःखको सुख मान लिया था तुमने, पतनमें तुम्हारी बुद्धिको उत्थानका भ्रम हो रहा था । नरकानलमें दग्ध होनेको जा रहे थे तुम और मान रहे थे मानो सहज ही सुन्दर स्वर्ग-सुखकी प्राप्ति हो जायगी । मुझसे यह नहीं देखा गया ! इसीसे मैंने तुम्हारे उस भ्रमके किलेको तोड़नेके लिये ही यह सब किया । तुम मेरे प्यारे हो भैया ! तुम भूल जाते हो, पर मैं कैसे भूलूँ ? कैसे तुम्हें दुःखसागरमें डूबनेको खुला छोड़ दूँ ।' यों कहकर तुमने मुझे हृदयसे लगा लिया । मेरा सारा भय-विषाद तुरंत भाग गया । मैं निहाल हो गया । तुम-जैसे सुहृद्को देखकर मैं अपनेको धन्य मानने लगा ।

मेरे स्वामी ! तुम्हारा स्वभाव बड़ा विलक्षण है । सब लोग सफलताके साथी हैं, सफलताके पुजारी हैं ! तुम असफलतामें अपना आत्मीयत्व प्रकट करते हो । पुण्यमें सब भाग चाहते हैं, पापमें कोई नहीं, परंतु तुम तो पापीको ही गले लगाते हो ! पतितपावन जो ठहरे ! संसारमें सती-साध्वीका मान सभी करते हैं, कुलटाको कौन पूछता है ! तुम ही एक ऐसे हो, जो कुलटा-कलङ्किनीका भी आदर करना चाहते हो ! व्यभिचारिणीको प्रेमके द्वारा सती-साध्वी बनाना तुम्हींको आता है । अपनी दशाका अब मुझे पता लग रहा है; क्योंकि तुमने दया करके मेरी आँखें खोल दी हैं । उस समय मैं भूला हुआ था । मैंने अपनी बहिर्मुखी बिगड़ी इन्द्रियोंकी तथा पतित मनकी परिपुष्टिके लिये जाने कितने दुधमुँहे विषभरे पदार्थोंकी शरण ले रक्खी थी । तुम कृपामयी वज्रवेदना देकर मुझे न प्रबोधित करते तो पता नहीं, मैं किस घोर नरकमें जाकर वहाँकी भीषण यन्त्रणा भोगता । तुम्हारा कैसे क्या उपकार मानूँ । पर एक बात पूछता हूँ । जब तुम्हारा मेरे प्रति इतना अपरिमित प्रेम है, इस पथकी नगण्य धूलके प्रति इतना स्नेह है, तब फिर सदाके लिये इसे अपने चरण-प्रान्तमें क्यों नहीं बसा लेते ? इतने भूल-विभ्रममें क्यों रखते हो! क्यों इतना भरमाते-भटकाते हो? कृपा करो नाथ ! मैं बहुत भोग चुका, अब तो सदाके लिये मुझे अपनी चरण-रज बनाकर निहाल कर दो ! मेरी यही तुम्हारे चरणोंमें आर्त-प्रार्थना है ।

श्यामसुन्दर !

मेरी कोई भी बात तुमसे छिपी नहीं है। जीवनमें क्या-क्या किया, कैसे-कैसे सुकर्म-दुष्कर्मोंके प्रवाह आये। सब तुम जानते हो। भक्तिकी, ज्ञानकी, वैराग्यकी बातें खूब कहीं-सुनीं। पर सब नाटकवत् ही ! कभी-कभी मनमें भक्तिकी, तुम्हारे प्रेमकी इच्छा-सी भी हुई, लेकिन वह फलवती नहीं हुई। होती कैसे ? उस इच्छामें कितनी मन्दता थी और भोगोंकी इच्छामें कितनी तीव्रता और महानता थी। तुम एक-एक बातको देख रहे थे। कुछ लोग मुझे भक्त मानते हैं—प्रेमी कहते हैं और मैं खल-मति उसे अस्वीकार करता हुआ भी हाव-भावसे, शब्द-जालसे स्वीकार कर लेता हूँ। कितना प्रमाद है यह मेरा। इस मिथ्या अभिमानकी भी कोई सीमा है ? जिसके हृदयमें भक्ति या प्रेमकी कहीं लेश गन्ध भी न हो, वह अपनेको भक्त और प्रेमी माने ! ऐसा मानकर, प्रभो ! मैं पापात्मा तुम्हारे भक्तों और प्रेमियोंपर कलङ्क ही तो लगा रहा हूँ। जिसका मन भाँति-भाँतिके प्रलोभनोंसे पूर्ण है, जो विविध कामना-वासनाओंका क्रीतदास है, उस मनको लेकर क्या कोई भक्त या प्रेमी बन सकता है। कैसी विडम्बना है प्रभो ! कभी-कभी मनमें आती है—तुमसे प्रार्थना भी करता हूँ कि नाथ मुझे अपनी सच्ची भक्ति और सच्चा प्रेम दो, कभी-कभी अपने इस दम्भपूर्ण जीवनपर घृणा भी होती है, इसे धिक्कार भी देता हूँ, पर कितने क्षण लोगोंसे कहता हूँ—अहर्निश मनसे भगवान्का चिन्तन, भगवान्का नाम-स्मरण

तथा जिह्वासे भगवान्‌का नाम-जप किया करो—परंतु मैं स्वयं कितना क्या करता हूँ सो तो तुमसे छिपा नहीं है।

कभी-कभी बड़ा आश्चर्य होता है, यह देखकर कि इस नीचातिनीच, परम अधमपर तुम इतनी कृपा करते हो; मालूम होता है, यह तुम्हारा स्वभाव ही है। गोस्वामी तुलसीदासजीने ठीक ही कहा है—'प्रभुमूरति कृपामयी है।' पर तुम्हारा ऐसा स्वभाव है—इस बातको कहता-सुनता और कभी-कभी अनुभव करता हुआ मैं तुम्हारे चरणोंकी धूल तो नहीं बन जाता, सदाके लिये तुम्हारे अरुण-चरणकमलोंपर लुट तो नहीं पड़ता। कितना नीच और दुष्टहृदय हूँ मैं! तुम्हारी इस सहज स्वाभाविक कृपाका भी मैं दुरुपयोग करता हूँ। ऐसी चेष्टा करता हूँ कि जिसमें लोग यह समझें कि यह तो बस, भगवान्‌की कृपाका ही अनन्य आश्रित है। इतना सब होनेपर भी तुम्हारी कृपामें जरा भी अन्तर नहीं। वह तो मानो दिनोंदिन बढ़ ही रही है। इस अप्रार्थित कृपाका ही इस पतित अधमको भरोसा है। तुमने इस नीचपर सदा ही कृपा की है, करते हो और करते ही रहोगे। तुम कृपा किये बिना रह ही नहीं सकते; क्योंकि तुम्हारा स्वभाव ही कृपापरवशता है।

नाथ! तुम्हारी कृपामें जो यह विश्वास है, यह कभी घटे नहीं, बढ़ता ही रहे, यही प्रार्थना है। प्रभो! मेरी बुरी भावनाओंपर तो तुम ध्यान देते ही नहीं, कभी-कभी क्षणभरके लिये जो सच्चे मनसे मैं विषयोंमें वैराग्यकी और तुम्हारी भक्ति और प्रेमकी इच्छा करता हूँ, बस, उसीको पकड़कर पूर्ण कर देना—यह विनीत प्रार्थना है।

[१५]

अखिलरसामृतसिन्धु !

तुम कैसे हो, क्या हो कौन जानता है। लोग भाँति-भाँतिसे तर्क करते हैं। प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द-प्रमाणोंसे तुम्हारे तत्त्व-स्वरूपकी स्थापना करते हैं, परंतु तुम्हारा यथार्थ स्वरूप किसीके भी तर्कमें नहीं आता। तुम तर्कसे परे जो ठहरे ! परंतु तुम मेरे हो, यह तो परम सत्य ही है। मैं तुमको जानता हूँ और तुम तो मुझको जानते ही हो। गहरी रात्रिमें जब सारा संसार सो जाता है, उस समय यत्र-तत्र फैले हुए बादलोंकी आड़से जब चन्द्रमाकी चाँदनी छिप-छिपकर अपनी झाँकी दिखाती है, तब हे मेरे प्राणोंके प्रकाश ! तुम्हारी बड़ी मीठी स्मृति जाग उठती है। वही मोहिनी छिपी हँसी, वही अकेलेमें खेलना——उस नित्य मधुमयी आनन्दरसलीलाको याद करते-करते मैं अपनेको भूल जाता हूँ। वहाँ किसी भी विचार-वितर्कके लिये स्थान नहीं रहता। दार्शनिक सिद्धान्तोंकी सारी विभिन्न धाराएँ वहाँ मेरी इस आनन्द-सुधाकी महान् धारामें बह जाती हैं। मेरे अन्तरात्मा ! यह तुम्हारी ही अतुलनीय अचिन्त्य लीला है। मैं अपनी इस अनुभूतिका क्या गौरव करूँ, सारा गौरव तो तुम्हारा है। मैं जो तुम्हारी लीलावली देख-देखकर नित्य मुग्ध होता रहता हूँ, इसमें मेरा क्या है ! यह भी तुम्हारी ही कृपाकी महिमा है। लोग विभिन्न विचित्र

रसोंके द्वारा तुम्हारी उपासना करते हैं। वे उस रसके आश्रय हैं और तुम उस रसके विषय हो। परंतु हे रसमय! रस तो एक ही है, अतएव तुम्हीं रसके आश्रय हो और तुम्हीं विषय भी हो। इतना होनेपर भी तुम लीलारसमय हो। इसीलिये तुम हो, और मैं भी हूँ। नहीं तो, सब कुछ तुम्हीं हो। रसिकेन्द्र-शिरोमणि! प्रत्येक रसमें जबतक तुमको नहीं देखा जाता, तबतक न तुम्हारा पता लगता है और न मुझको मेरी ही पहचान होती है। मैं कौन हूँ, इस जानकारीसे पहले यह जानना होगा कि तुम कौन हो। परंतु हे सौन्दर्य-माधुर्य-सुधा-रसके अनन्त असीम अपरिमेय महार्णव! जब रस-रसमें तुम्हें देखकर मैं तुम्हारे अंदरसे मेरा अनुसन्धान करने लगता हूँ, तब आनन्दरस-सागरकी एक-एक लहरोंमें मेरा समस्त अनुसन्धानका प्रयास चरितार्थ हो उठता है। तब यह प्रत्यक्ष अनुभूति होती है कि तुममें और मुझमें एक नित्य अखण्ड अटूट मधुर रसपूर्ण सम्बन्ध है। सम्बन्धका प्रत्यक्ष अनुभव होते ही मैं सारे विश्वको, विश्वके कारणको और अपनेको भूल जाता हूँ, सब तुम्हारे अंदर विलीन हो जाते हैं। हे मेरे नित्य सत्य, नित्य मङ्गलमय, नित्य मधुर, नित्य सुन्दर, रसघन-विग्रह! मैं सदा तुम्हारा हूँ और तुम सदा मेरे हो। यह तुम्हारा और मेरा सम्बन्ध सदा बना ही है, बना ही रहेगा। यही विश्वास है और यह विश्वास नित्य सत्य सिद्ध हो, यही तुमसे हृदयकी विनीत प्रार्थना है।

[१६]

मेरे प्रभो !

मैं जानता हूँ—तुम आनन्दमय हो, ज्ञानमय हो, ज्योतिर्मय हो। जो कुछ भी दुःख, अज्ञान और अन्धकार है सब तुम्हें भूल जानेसे, छोड़ देनेसे या पीठ देनेसे ही है। मैं जानता हूँ कि मैं दीपशिखाकी लपटकी ओर लपकनेवाले पतङ्गकी तरह बड़े वेगसे मृत्युकी ओर दौड़ा जा रहा हूँ। जानता हूँ, यहाँसे निश्चय ही चले जाना है, यहाँका कुछ भी अपना नहीं है, कुछ भी साथ नहीं जायगा। यह भी जानता हूँ कि तुम्हें याद रखनेसे, तुम्हारी ओर जीवनको मोड़ देनेसे ही सुख-शान्ति अपने-आप आ जाते हैं। इतना सब होनेपर भी तुम्हारी ओर

जीवन लग नहीं रहा है। तुम्हारी स्मृति अन्य सारी स्मृतियोंको तुरंत आत्मसात् नहीं कर पा रही है। ऐसा क्यों हो रहा है प्रभो! यहाँका यह धन-ऐश्वर्य, मान-सम्मान, पद-अधिकार मेरे क्या काम आयेगा? दस ही मिनट बाद जिसको फाँसीके काटपर झूलना है उसको त्रैलोक्यकी सम्पत्ति दी जाय तो वह उससे कैसे तृप्त हो सकेगा? उसी प्रकार मृत्युके मुँहका शिकार होकर भी मैं पूर्णरूपसे केवल तुम्हारा चिन्तन न करके क्षण-विनाशी विषयोंका ही चिन्तन करता हूँ यह क्या बात है? तो क्या नाथ! मैं तुमको प्राप्त करना नहीं चाहता? क्या मैं तुम्हारे बिना रहना पसंद करता हूँ? ऐसी बात तो नहीं मालूम होती। मुझे यदि तुम मिल जाओ तो फिर जगत्में ऐसी कौन-सी वस्तु है, जिसकी मैं चाह करूँगा। तुम क्या इस बातको नहीं जानते मेरे स्वामी! तुम मेरी प्रार्थना सुन लो। अपनी सेवामें मुझे सदाके लिये बिना कौड़ी-पैसेका गुलाम बनाकर रख लो। मैं सत्य कहता हूँ, फिर मैं तुमसे इस लोक या परलोककी कोई भी चीज नहीं चाहूँगा। मोक्ष भी नहीं माँगूँगा। मैं तो बस, केवल तुम्हींको चाहता हूँ। तुम्हारा मधुर-मनोहर रूप-माधुर्य, तुम्हारी मधुर-मनोहर मुरली-ध्वनि, तुम्हारा मधुर-मनोहर विरुद और स्वभाव तथा तुम्हारी अप्रतिम अचिन्त्यानन्त मधुर-मनोहर गुणावली मेरे मनको बार-बार खींचे ले रही है। मुझे इनका प्रत्यक्ष साक्षात् करा दो कृपा करके मेरे अन्तरके प्रभु!

[१७]

मेरे सर्वशक्तिमान् स्वामी !

यह सच है कि तुम्हारी दया सभी जीवोंपर समान है और वह है असीम। परंतु मैं इतना अभागा हूँ कि तुम्हारे उस करुणामृतकी वर्षामें सदा नहा नहीं पाता। जब अपने अनुकूल कोई बात देखता हूँ, तब तो कभी-कभी तुम्हारी दया मान भी लेता हूँ, परंतु प्रतिकूलमें तो कभी मानता ही नहीं। यह भी जानता हूँ कि तुम्हारी दया दोनों ही रूपोंमें आती है और आती है मेरा कल्याण करनेके लिये ही, परंतु प्रतिकूलताके रूपमें मन उसे स्वीकार नहीं करता। प्रभो ! वह दिन कब होगा जब मैं अनुकूलता और प्रतिकूलता दोनोंको ही तुम्हारी कृपा-सुधा समझकर बड़े आनन्दसे पी जाऊँगा। कब मैं अपमान-मान, तिरस्कार-पुरस्कार, प्रशंसा-निन्दा, लाभ-हानि, सुख-दुःख और जीवन-मरण सभीमें तुम्हारी दयाके दर्शन कर परम शान्ति और संतोषका अनुभव करूँगा ?

मेरे प्रभो ! इस समय इस बातसे मनमें बड़ी ही पीड़ा हो रही है कि मैं तुम्हारा कहलाकर भी वस्तुतः अपनेको

तुम्हारा बना नहीं पाया। देखता हूँ—स्पष्ट देख पाता हूँ कि मुझपर अब भी विषयोंका अधिकार है। कभी-कभी तो बड़ी ही बुरी तरहसे विषय-वासना अपना प्रभुत्व प्रकट करती है और बाध्य करना चाहती है अपनी गुलामी करानेके लिये! उस समय बड़ी व्यथा होती है—बस, तुम्हारी कृपा ही उस समय बचाती है। देखता हूँ—तुम्हारी कृपाके द्वारा क्षणमें ही उस वासनाका विनाश हो जाता है। इतना होनेपर भी मैं सर्वथा तुम्हारा ही नहीं बन पाता हूँ।

मेरे सर्वशक्तिमान् स्वामी! मालूम होता है मेरे प्रयत्नसे कुछ नहीं होगा। अब तो तुम्हीं अपनी शक्तिसे इस अधमको उठाकर हृदयसे चिपका लो। यह तुम जानते ही हो कि कभी-कभी तो मेरे प्राण तुम्हारे लिये छटपटाते ही हैं। बुद्धिका निर्णय भी यही होता है कि तुम्हारा ही बन जानेमें मेरा कल्याण है। परंतु दुष्ट मन नहीं मानता। मेरे प्राणोंकी छटपटाहटपर विचार कर मेरे प्रभो! तुम्हीं अपनी कृपासे मुझे बचाओ। ऐसा न करो तो यही कर दो कि मुझे न तो कभी कोई चाह हो और न मैं बार-बार प्रार्थना करके उसके लिये तुम्हें सताऊँ ही। तुम जो करो, जैसे करो, जब करो, मुझे किसी भी हालतमें कैसे भी रक्खो—मैं उसीमें संतुष्ट रहूँ और इस बातका अनुभव करता रहूँ कि यह सब तुम्हारी ही कृपा है। तुम्हारे अनजानमें कुछ नहीं हो रहा है। तुम सोच-समझकर ही मुझे इस स्थितिमें रक्खे हुए हो और सचमुच इसीमें कल्याण है।

[१८]

मेरे प्राणनाथ !

पता नहीं, लोग तुमसे अपने भोग-विलासके लिये, सुख-समृद्धिके लिये क्या-क्या चाहते हैं। तुम उन सबको वे वस्तुएँ देना चाहते हो, देते हो, नहीं देना चाहते, नहीं देते। पर तुम जानते हो, मैं तुमसे यह सब कुछ भी नहीं चाहता। मुझे इन वस्तुओंसे न कोई प्रयोजन है और न इनसे मुझे कोई शान्ति ही मिलती है। मेरे सुखकी सामग्री तो बस, एक तुम हो, तुम्हारी प्यारी मीठी स्मृति है। जब यह मन भटक-भटकाकर लौट आता है और स्वस्थ होकर तुम्हारे अरुण-चरणोंकी ओर देखने लगता है, उस समय कितना आनन्द मिलता है मुझे ! हाय ! हाय ! उस आनन्दकी कहीं तुलना भी है ? कैसा मधुर, कैसा सुन्दर, कैसा निर्मल, कैसा विलक्षण है यह आनन्द ! फिर जब तुम अपनी लीलामाधुरीके पट खोलने लगते हो, अपने व्रजकी, अपने सखाओंकी, अपनी निकुञ्जमाधुरीकी एक-एक सुमधुर सुधामयी झाँकी दिखाने लगते हो, तब तो बस, आनन्द सीमा पार कर जाता है। फिर

उसके सामने ब्रह्मानन्द भी तुच्छ और नगण्य प्रतीत होता है। जगत्, जगत‍्के पदार्थ, दुःख-सुख, भोग, मोक्ष, किसी भी वस्तुका पता नहीं रहता उस समय। मन-बुद्धि रहते होंगे, परंतु उनका भी कहीं पता नहीं लगता। कभी-कभी तो यहाँतक हो जाता है कि बस, तुम्हारी मधुर-मनोहर झाँकी ही रह जाती है। देखनेवाला भी खो जाता है। उस समयके आनन्दकी जाति और परिमाणका पता कौन बताये! आनन्दके सिवा अन्य कोई हो तो ?

पर मेरे प्राणनाथ! इस अवस्थामें फिर परिवर्तन क्यों होता है ? तुम अपनी सारी मधुर झाँकियोंको छिपा क्यों लेते हो ? पहले तो मेरा कहा मान लेते थे। मेरे कहनेपर—आग्रह करनेपर अपनी रूप-लीला-पिटारीको जब-तब खोल दिया करते थे, पर अब मुझसे ऐसा कौन-सा महान् अपराध बन गया कि तुम मेरी बात सुनकर भी अनसुनी-सी कर देते हो, बस, मुसकराकर रह जाते हो। कभी-कभी चित्तमें बड़ी व्याकुलता होती है, पर मेरे हाथमें तो कुछ है ही नहीं। उस बार बड़ी दया की थी तुमने, जब मेरी दयनीय दशा देखकर तुम्हारा हृदय पिघला था और तुमने बड़ी उदारताके साथ नयी-नयी लीलाओंके मधुर दर्शन कराये थे और फिर कई दिनोंतक लगातार कराते ही रहे थे। मैंने समझा था—अब तो जीवनके शेष क्षणतक यही क्रम चलेगा, इसमें विराम होगा ही नहीं। पर इस विचारके कुछ ही समय बाद, पता नहीं

तुमने क्यों अपनी लीलाधाराके प्रवाहमें बाँध-सा लगा दिया ? प्रभो ! इस वञ्चनाका क्या कारण है ?

आनन्द-लीलारस-सुधा-विग्रह ! तुम जानते हो, आजकल मैं कितना अशान्त हूँ, कितना आकुल हूँ। और इस सारी अशान्ति और आकुलताका कारण भी तुम अन्तर्यामीसे छिपा नहीं है। क्या मेरी अब यही दशा रहेगी ? यों ही तड़पाना था तो फिर उस रस-सुधाका पान ही क्यों कराया ? कहते हैं कि भक्तोंकी रसास्वादन-आकाङ्क्षाको बढ़ानेके लिये भगवान् ऐसा किया करते हैं; क्योंकि बढ़ी हुई आकाङ्क्षाकी पूर्तिमें विशेष आनन्द प्राप्त होता है। पर मेरे नाथ ! तुम जानते हो, मैं तो भक्त नहीं हूँ, भक्तोंकी चरण-रेणु-कणका भी अधिकारी नहीं हूँ। यह तो तुम्हारी अहैतुकी कृपा है और अत्युक्ति न समझी जाय तो यह भी कहा जा सकता है—यह तुम्हारा यथेच्छाचार है, जो तुम मुझ-सरीखे सर्वथा अनधिकारीको अपनी इस गुह्यतम लीलामाधुरीके दर्शन कराते हो। पर जब तुम कराते ही हो तब मैं अनधिकारी भी कैसे रहा ?

जो कुछ भी हो, अब पुनः कृपा करो। कृपा तो तुम्हारी सदा है ही, कृपाका साक्षात् कराओ उस बाँधको सर्वथा तोड़कर ! यदि कोई अपराध हुआ है तो उसे बता दो, पर फिर वैसा अपराध न बने, इसकी व्यवस्था भी तो तुम्हींको करनी पड़ेगी। मैं पङ्गु भला, क्या करने योग्य हूँ।

[१९]

प्रियतम !

तुम तो मेरे अन्तरकी एक-एक बात जानते हो । तुम्हीं मेरे अन्तरतम प्रियतम हो । बताओ, मैं तुमसे कभी अपने लिये कुछ चाहता हूँ क्या ? मेरे तो सुखस्वरूप बस, एक तुम्हीं हो। हृदयेश्वर ! तुमसे क्या छिपा है । मेरे हृदयके अन्तस्तलकी वासना एकमात्र यही तो है कि मैं सदा-सर्वदा तुम्हारी सन्निधिमें ही रहूँ । सब कुछ छोड़कर नित्य-निरन्तर तुम्हारी चाकरीमें ही मेरे जीवनका प्रत्येक क्षण लगा रहे । क्या मेरा यह मनोरथ नहीं है ? पर यदि यही मनोरथ है तो फिर इस विडम्बनाका क्या अर्थ है ? कुछ भी तो समझमें नहीं आता। तो नाथ ! क्या यह मनका धोखा है—आत्मवञ्चना है ? ऐसा तो नहीं होना चाहिये । तुम्हारे लिये मन सदा तड़पता रहता है, बार-बार तुम्हारी स्मृति होती है और मेरी आँखें छलक उठती हैं । कोई देख न ले, इसलिये मुँह फेरकर आँसुओंको पोंछ डालता हूँ । तुम तो सदा यह सब देखते ही हो ।

मन कहता है, आठों पहर तुम्हारे चरणतलमें ही रहूँ, बस, निरन्तर तुम्हारी रूप-सुधा-माधुरीका पान करता रहूँ।

पर ऐसा होता क्यों नहीं ? क्यों सब कुछ छोड़कर, सबसे नाता तोड़कर तुम्हारी सेवामें नहीं लग जाता ? मालूम होता है मुझे भ्रम हो रहा है। तुम्हारे नामपर कहीं आत्मसुखकी कोई वासना मनमें छिपी है और वही मुझे प्रताडित कर रही है। केवल मनकी ऊपरी लालसासे क्या होता है ? यदि तीव्र और अनन्य लालसा होती तो तुम्हारी माधुरीके नित्य आस्वादन-से मैं क्यों वञ्चित रहता ? सत्य है—मेरी रति असती है, मेरी प्रीति व्यभिचारिणी है, मेरी मति अव्यवसायात्मिका है; परंतु नाथ ! इनका सुधार भी तो तुम्हारी ही अहैतुकी कृपासे होगा। तुम्हारी कृपासे मूक वाचाल हो जाता है, पङ्गु पहाड़ लाँघ जाता है, फिर क्या उस कृपाके द्वारा मेरी यह वासना—शुद्ध होकर—पूर्ण नहीं होगी ?

मैं जैसा हूँ, जो कुछ हूँ, तुम्हारे सामने हूँ। मेरी त्रुटियाँ जिनका मुझे बोध नहीं है, तुम्हारे सामने एक-एक प्रत्यक्ष है। उन त्रुटियोंको पूरी भी तुम्हीं करोगे। मुझे तो उनमेंसे बहुतोंका पतातक नहीं है। त्रुटियाँ हैं, इसका विश्वास इसीसे होता है कि मेरा मनोरथ—तुम्हारी माधुरीके नित्य आस्वादनका मनोऽभिलाष पूर्ण जो नहीं हो रहा है !

मेरे प्राणोंके प्राण, नित्य मधुर प्रियतम ! जो कुछ भी कमी हो, उसे अपनी कृपादृष्टिसे पूरी कर दो और अपने रससमुद्रमें सदाके लिये डुबाकर निहाल कर दो।

लीलामय !

तुम्हारी लीलाका रहस्य कौन जान सकता है ? कब तुम किस क्रीड़ामें रत रहते हो और उससे संसारमें कैसे-कैसे अचिन्त्य परिवर्तन हो जाते हैं, इस बातको कोई भी नहीं जान सकता। आज जगत्‌में जो कुछ हो रहा है, इसका क्या परिणाम होगा और इस खेलका कब दूसरा दृश्य आयेगा, कोई नहीं कह सकता। कितना परिवर्तन हो गया ? विद्वान् कहलानेवाले लोग तुम्हें स्वीकार करनेमें भी सकुचाने लगे हैं ! कुछ उच्चशिक्षित लोग तो तुम्हारा नाम भी मिटानेको कमर कसे हुए हैं। इधर अविश्वासी पुजारी प्रायः तुम्हारे नामपर लोगोंको ठगनेमें लगे हैं। मन्दिर, मठ, मस्जिद, आश्रम, गिर्जा, विहार, तीर्थ किसीमें भी आज वह पहले-सा सरल विश्वास नहीं दिखायी देता; कथा बाँचनेवाले दूसरोंको सिद्धान्त बतलाते हैं, पर स्वयं शङ्काशील हैं। उपदेशक, आचार्य, सम्पादक, कवि और वक्ता लोगोंको ईश्वर, धर्म, कर्म, देशसेवा आदि जिन कार्योंके लिये बड़े-बड़े सुन्दर और जोशीले शब्दोंमें उत्साहित करते हैं, स्वयं उन्हीं कार्योंमें सच्चे हृदयसे कुछ भी करना नहीं चाहते, बल्कि अंदर-ही-अंदर विपरीत आचरण करते हैं। तुलसी-सूर, ज्ञानदेव-एकनाथ, कबीर-पलटू, मीरा-सहजो प्रभृति महान् आत्माओंकी कविताओं और भावनाओंसे बढ़कर कविता और भावनाका

स्वरूप सामने रक्खा जाता है, परंतु उनका-सा हृदय आज कहीं ढूँढ़े भी नहीं मिलता; फिर भी कहा जाता है कि हमारी उन्नति हो रही है, क्रमशः हम विकासको प्राप्त हो रहे हैं ! यह उन्नति या विकास दैवी है या आसुरी, आत्माका है या अनात्माका, इस बातका निर्णय तो कौन करे, परंतु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यह सब तुम्हारी लीला है, तुम्हारे अभिनयका एक सीन है ।

खेलो ! खूब खेलो, खिलाड़ी ! सबको अपने साथ खेलाते रहो, यही तो तुम्हारा काम है । आप ही सब कुछ बनकर, आप ही सदा सब कुछको लेकर 'सब कुछ' में खेलते हो और अलग रहकर देखते भी रहते हो; तुम्हारे खेलमें क्यों विराम हो ? नये-नये पर्दे पड़ते रहें, सीन बदलते रहें, तुम्हारा लीला-प्रवाह सदा अविच्छिन्न गतिसे चलता रहे; इसमें हम क्यों आपत्ति करें ? तुम जबतक चाहो, हमें अपने संकल्पसे अलग कल्पित कर हमसे खेलते रहो, पर हमारी इतनी आँखें जरूर खोल दो कि तुम्हारे इस संकल्पके आधारपर टिके हुए अपने भिन्न अस्तित्वके सिवा शेष सब खेलोंमें, खिलौनोंमें, सबमें सब समय केवल तुम्हारी ही छबि दीख पड़े, तुम और हम दो ही रह जायँ, तुम हमें जानो और हम तुम्हें, तुम हमें देखो और हम तुम्हें !

बस, यही एक प्रार्थना है ।

मेरे अन्तरात्मन् !

मैं यह जानता हूँ कि मेरे द्वारा जो कुछ भी हो रहा है, सबमें तुम्हारा मङ्गलमय हाथ है और मुझे जो कुछ भी देखने, सुनने, समझने और ग्रहण करनेको मिल रहा है, सबमें तुम्हारा मङ्गलविधान काम कर रहा है। जिस समय इसका प्रत्यक्ष अनुभव होता है, उस समय न तो अभिमान, अहंकार, ममता और आसक्ति रहती है और न हर्ष-शोक, राग-द्वेष, आकाङ्क्षा-अपेक्षाके द्वन्द्व ही रहते हैं। रहता है—केवल तुम्हारा, तुम्हारे आत्मीयत्वका, तुम्हारे सौहार्दका और तुम्हारे प्रेमका दिव्य साक्षात्कार ! सारे कार्योंमें, सारी अनुभूतियोंमें और सारे जगत्में उस समय तुम्हारी मधुर दिव्यता प्रसरित दीखती है—सब ओर तथा सर्वथा। मैं चाहता हूँ, यह स्थिति सर्वदा बनी रहे; क्योंकि यही सत्य है। जगत् तो तुम्हारा खेल है और वह तुम खेलनेवालेसे सर्वथा अभिन्न है। तुम्हीं खेलकी सामग्री हो, तुम्हीं खेल हो और तुम्हीं खेलनेवाले हो।

इस प्रकारकी स्थितिमें जगत्का कोई भी कार्य न भार प्रतीत होता है, न बन्धन। तुम्हारी ही सत्ता, तुम्हारी ही सामग्री, तुम्हारी ही पूजा और तुम्हीं पूजाके प्रेरक ! उस समयके आनन्दकी जाति भी दिव्य होती है और होती है वह तुम्हींसे मिली हुई। मेरे अन्तरात्मन् ! यह स्थिति निरन्तर बनी रहे। मेरे द्वारा जगत्में जो कुछ भी हो, केवल तुम्हारा ही कार्य हो, तुम्हारी ही पूजा हो और बिना किसी

अभिमान-अहंकारके मुझको इसका पता रहे, जिससे तुम्हारे अचिन्त्यानन्त माधुर्यका दिव्य आस्वादन मुझे मिलता रहे!

नाथ! मैं तुम्हारा हूँ, तुम स्वीकार कर चुके हो, मैं भी मान चुका हूँ। इतना होनेपर भी कभी-कभी इसमें व्यतिक्रम-सा क्यों दीखता है? मालूम होता है यह तुम्हारा खेल है। रसास्वादनकी वृद्धिके लिये ही तुम ऐसा करते होओगे! मुझे प्रतीत भी होता है—जब-जब किसी भूलकी स्थितिके बाद मैं यथार्थ स्थितिमें आता हूँ, तब-तब विशेष आनन्द होता है—जैसे किसी खोये हुए अमूल्य रत्नके मिल जानेपर विशेष आनन्द हुआ करता है। उस समय एक विलक्षण उल्लास-समुद्रमें मानो नयी-नयी तरङ्गें उछलने लगती हैं।

परंतु प्राणप्रियतम! मैं चाहता हूँ कि निरन्तर यथार्थ स्थिति भी रहे और उसमें उत्तरोत्तर नयी-नयी उल्लास-लहरियाँ भी उठती तथा बढ़ती रहें। यह है भी सत्य, क्योंकि जब तुम नित्य नवीन हो, नित्य नवीन आनन्दमय हो, नित्य नवीन माधुर्य और सौन्दर्यके अपार पारावार हो, तब तुम्हें और तुम्हारे मङ्गलमय विधानको देखनेवालेके हृदयमें नित्य नूतन आनन्दानुभूतियाँ होनी ही चाहिये।

मेरे प्राणोंके प्राण! तुम चाहो तो सब कुछ हो सकता है। मुझसे कुछ नहीं होगा। तुम स्वयं ऐसी विलक्षण परिस्थितिका निर्माण कर दो, जिसमें अन्य सारी परिस्थितियाँ समा जायँ और मुझे तुम्हारे मधुर तथा दिव्य स्वरूपका तथा तुम अकर्ताके सर्व-कर्तृत्वका दर्शन होता रहे।

मैं हरि पतित-पावन सुने।
मैं पतित तुम पतित-पावन दोउ बानक बने॥
ब्याध गनिका गज अजामिल साखि निगमनि भने।
और अधम अनेक तारे जात कापै गने॥
जानि नाम अजानि लीन्हें नरक सुरपुर मने।
दासतुलसी सरन आयो, राखिये आपने॥

—विनय पत्रिका

पता—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)